JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue

JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)

An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

ब्रिटिश कुमाऊँ एवं तिब्बत व्यापार (1857.1947 ई0)

Bharti Bisht
Associate Professor, Department of History,
Hindu College, Moradabad
Mahatma Jyotiba Phule Ruhelkhand University Bareilly,
India

सारांश

औननिवेशिक कुमाऊँ की आर्थिकता की महत्वपूर्ण विशेषता भारत तिब्बत व्यापार कहीं जा सकती है। इस व्यापार में भोटिया जो कुमाऊँ के सीमान्त क्षेत्र में निवास करते हैं उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही और उन्होंने उक्त व्यापार में उल्लेखनीय ख्याति प्राप्त की। यद्यपि भारत तिब्बत व्यापार का इतिहास काफी पुराना है जो कि 9वीं एवं 11वीं शताब्दी के शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों से प्रमाणित होता है। कत्यूरी राजाओं के शासन काल में भारत तिब्बत व्यापार में काफी वृद्धि हुई। मुगलकाल में व्यापार संकुचित हुआ किन्तु चन्द राजाओं विशेषतया बाजवहादुर चन्द ने व्यापार को प्रोत्साहन दिया। ब्रिटिश काल में सीमान्त क्षेत्र में सड़क निर्माण हुआ और व्यापार में वृद्धि हुई। जोहार, दारमा तथा चौंदस के भोटिये, नेओ, लिपुलेख तथा लुम्पिपालेख दर्रों से तिब्बत व्यापार करते थे। सुहागा, ऊन, सोना, चवरपूँछ, कीमती पत्थर, नमक आदि प्रमुख आयात वस्तुएँ थी जिनकी मांग न केवल कलकत्ता, बम्बई, कानपुर आदि में थी बल्कि विदेशों में ये वस्तुएं लोकप्रिय थी। व्यापार की कड़ी शर्तों एवं अनेक करों के बावजूद उक्त व्यापार भोटियों के लिये लाभदायक था। भारत से अनाज, तेल, चाय, सूती वस्त्र, बर्तन, चीनी, गुड़, तम्बाकू, जूते तथा खालें प्रमुख निर्यात थे। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीय वस्तुओं की कीमत वृद्धि के कारण व्यापार में कमी आई। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों की रूस को रोकने के लिए तिब्बत को बफर स्टेट वनाने की कोशिश रही। मूल्यों में उतार चढ़ाव के वावजूद भारत तिब्बत व्यापार जारी रहा। लेकिन सन् 1962 में चीन भारत युद्ध के बाद प्राचीन समय से चला आ रहा यह व्यापार अचानक समाप्त हो गया।

ब्रिटिश शासन काल में तिब्बत से व्यापार एवं उसके प्रभाव –

ब्रिटिश शासन काल में कुमाऊँ का प्रमुख व्यापार तिब्बत के साथ था। तिब्बती व्यापार से इस जिले के भोटियां जाति के लोग जुड़े थे। अल्मोडा जिले में दारमा पट्टी, चोंदस पट्टी एवं जोहार परगना जुड़े थे। अल्मोड़ा जिले में दारमा पट्टी, चोंदस पट्टी एवं जोहार परगना भोट प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध है और यहां के निवासी भोटिया कहलाते है। यह स्मरणीय तथ्य है भोट प्रदेश अथवा भोटियों का भूटान एवं भूटानवासियों से कोई सम्बन्ध नहीं है तथा न तिब्बत एवं तिब्बतवासियों से इन भोटान्तिकों का कोई सम्बन्ध है। भोटिया लोग स्वयं तिब्बत को ''हूण देश'' एवं तिब्बतियों को ''हूणिया'' कहते हैं। अल्मोड़ा जिले में दारमा, चौदंस तथा व्यांस तीनों भोट पट्टियों को मिलाकर दारमा परगना बना है। भोटिया हिन्दू मतावलम्बी हैं तथा क्षत्रिय जाति के हैं इनके नाम के साथ सिंह लगा रहता है ये हिन्दी एवं तिब्बत की मिश्रित भाषा

बोलते हैं। अल्मोड़ा जिले के ''भोटिया लोगों में जौहार परगने के भोटिया विशेष पढ़े–लिखे थे, इसके बाद चौदस एवं व्यांस के भोटिया आते थे लेकिन दारमा के भोटिये बहुत पिछड़े हुये थे। इन भोटियों का मुख्य व्यवसाय तिब्बत से व्यापार था।

व्यापार का आरम्भिक इतिहास –

भोटिया तिब्बत व्यापार जिसे भारत–तिब्बत व्यापार भी कहा जा सकता है का इतिहास काफी पुराना है। निःसन्देह भोटियों ने हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि के रूप में हिमालय पार तिब्बत में व्यापार करने में विश्व ख्याति प्राप्त की। कुमाऊँ क्षेत्र से सम्बन्धित 9वीं व 11वीं शताब्दी तक के कुछ शिलालेख एवं ताम्रलेख मिलते हैं जिनसे भारत तिब्बत व्यापार विदित होता है। इन शिलालेखों से यह स्पष्ट होता है कि हिमालयी क्षेत्र का तिब्बत से बहुत पहले से ही सम्पर्क रहा था यद्यपि इन दोनों देशों के बीच स्थापित सम्पर्क को अधिक परिभाषित नहीं किया गया है तो भी यह सम्बन्ध व्यापार पर आधारित प्रतीत होता है।

कुणिन्द राज्य को कुषाणों द्वारा जीत लिए जाने के बाद भारत के तिब्बत के साथ होने वाले व्यापार में परिवर्तन लक्षित होते हैं क्योंकि कुषाण काल में मार्ग में होने वाली डकैती तथा ठगी को रोकने के कठोर प्रयास किये गये थे। जब कुषाणों के उत्तराधिकारी के रूप में कत्यूरी राजाओं ने कुमाऊँ का राज्य प्राप्त किया तो उस समय भोटिया व्यापार में काफी वृद्धि हुई। उस समय भोटिया जो चीजें तिब्बत से खरीद कर लाये थे, उनमें सोना, जवाहरात जड़ी बूटियों, कस्तूरी, गुगुल तथा चंवर पूँछ आदि थे। इन चीजों की कुमाऊँ एवं उसके बाहर काफी मांग थी।

व्यापार का विकास –

धीरे–धीरे तिब्बत के साथ भोटिया व्यापार का विकास हेाता गया लेकिन मुगल साम्राज्य के दौरान भोटिया व्यापार के लिए बुरा समय आया। 16वीं शताब्दी में चन्द राज्य में एक बार पुनः प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर यह व्यापार उत्थान की ओर अग्रसर हुआ। इसमें सबसे उल्लेखनीय द्रष्टान्त राजा बाजबहादुरचन्द का है जिसने अपने शासनकाल के दौरान प्रशासन में अधिक न्याय व शान्ति के दृष्टिकोण से जोहार को भी अपने राज्य में मिला लिया और तिब्बत की ओर जाने वाले दर्रों की उचित देखभाल की। बद्रीदत्त पाण्डे के अनुसार चन्द राजा बाज बहादुर चन्द धार्मिक विचारों के भी पक्के थे। मानसरोवर व कैलाश के यात्रियों द्वारा लामाओं की अत्याचारपूर्ण कहानियों को सुनकर वे दुःखी होते थे। उन्होंने भोट के रास्ते तिब्बत पर चढ़ाई कर दी और 1670 ई0 में तकलाखाल (तंग्–ला–खर) के किले को छीन लिया। भोटिये जो दस्तूरी (भेंट) तिब्बतियों को देते थे वह भी बन्द कर दी गयी, किन्तु जब तिब्बतियों ने यह स्वीकार किया कि वे भविष्य में धर्म एवं रास्ते के बारे में किसी प्रकार का झगड़ा नहीं करेंगे, तब उसे जारी रहने दिया। 1790 ई0 में यह क्षेत्र गोरखों के अत्याचारी शासन के अधीन आया जिन्होंने यहां 25 वर्षों तक

(1815 ई0) राज्य किया। भोटियों के लिए यह समय व्यापार की दृष्टि से भय, प्रतिबन्धों एवं सभी प्रकार के अत्याचारों का था।

1815 ई0 से 1947 ई0 तक यह क्षेत्र ब्रिटिश शासन के अधीन रहा। अंग्रेज प्रशासकों ने प्रारम्भ से ही व्यापार से सम्बन्धित इस क्षेत्र को तथा यहां के निवासियों की भूमिका को समझ लिया था। अतः ब्रिटिश शासनकाल में इस क्षेत्र की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने हेतु नैन सिंह, विशन सिंह तथा मनी कम्पासी जैसे बड़े अन्वेषक व्यक्तियों को नियुक्त किया इन्होंने अपने भौगोलिक सर्वेक्षण द्वारा तिब्बत से व्यापार के नये व्यापारिक मार्गों की खोज की। अंग्रेजों ने भी तिब्बत में भारत के व्यापारिक एजेण्ट नियुक्त किये। आजादी से पूर्व भोटिया क्षेत्र में देश की सुरक्षा के लिए नयी सड़कों का निर्माण हुआ जिससे व्यापार में उन्नति हुई। यह उन्नति 1962 ई0 तक बनी रही। 1962 ई0 में चीन भारत युद्ध के बाद भारत तिब्बत व्यापार समाप्त हो गया।

महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग –

यद्यपि तिब्बत का पश्चिमी प्रदेश प्राकृतिक कठिनाईयों से परिपूर्ण एवं मानवीय संसाधनों से विहीन था, तथापि प्रकृति ने इसे बड़े ही मूल्यवान पदार्थ प्रदान किये हैं जिसमें उत्तम प्रकार की ऊन, बड़ी मात्रा में जड़ी–बूटियां, मूल्यवान पत्थर, चंवरपूँछ, बकरियां, भेड़ें, सुहागा एवं नमक आदि मुख्य हैं। भारत तथा तिब्बत के उत्पादनों में पूर्ण विपरीतता के कारण पारस्परिक आदान–प्रदान की एक पद्धति विकसित हुई। और सीमा क्षेत्र में रहने वाले भोटान्तिकों ने इस आदान–प्रदान अर्थात् व्यापार में मध्यस्थ की भूमिका अदा की। तिब्बत से व्यापार के दृष्टिकोण के कारण ही भोटियों ने इस कठिन पर्वतीय क्षेत्रों में रहना पसन्द किया।

तिब्बत से व्यापार के लिए वर्ष में दो यात्रायें होती थी। पहली जुलाई के प्रथम अथवा दूसरे सप्ताह में आरम्भ होती थी तथा दूसरी सितम्बर में आरम्भ होती थी जो पहली यात्रा से अधिक कठिन थी। चूंकि भारत से तिब्बत को निर्यात होने वाली वस्तुओं में अधिकांशतः अनाज ही होता था, अतः साधारणतया ये यात्रायें फसल काटने के बाद ही प्रारम्भ की जाती थी पहली यात्रा आरम्भ होने से पूर्व अर्थात् जून मास में ''जांगपोन'' अपने व्यापारिक प्रतिनिधियों को, जिन्हें ''सजारिया'' कहा जाता था भारत में निम्नलिखित वस्तुओं की जांच हेतु भेजता था। (1) पहला जोहार घाटी किसी छूत की बीमारी से ग्रसित तो नहीं है (2) भोटिया क्षेत्र में किसी बाहरी आक्रमण की सम्भावना तो नहीं है (3) तथा भोटिया क्षेत्र में अच्छी फसल की सम्भावना है अथवा दुर्भिक्ष के आसार तो नहीं है।

अतः उपुर्यक्त बिन्दुओं पर पूर्णतया सन्तुष्ट होने के बाद ही भारत से तिब्बत आने के व्यापारिक मार्ग खोल दिये जाते थे। यह व्यापार भारत तिब्बत सीमा पर निर्दिष्ट दर्रों से किया जाता था। जोहारी भोटिया अपना अधिकांश व्यापार ऊन्ता धुरा दर्रे से करते थे जो कि 17,590 फुट की ऊँचाई पर स्थित था, जब कि दारमा परगने के भोटिया व्यापारी अपना व्यापार नेओ (18,450 फुट), लिपुलेख (16789 फुट) तथा लुम्पियालेख (18,450) दर्रों से करते थे। लुम्पियालेख से एक रास्ता ज्ञानिमा मण्डी को जाता था यह बहुत दुर्गम मार्ग था जो दिसम्बर एवं जनवरी में बन्द रहता था। इन दर्रों से यात्रा करना काफी कठिन था। यथाकदा भुस्खलन से मार्ग में व्यापारियों के सम्मुख अनेक मुसीबतें आ जाती थी तथा कभी–कभी चट्टानों के गिरने से लोगों की जानें भी चली जाती थी। इन प्राकृतिक आपदाओं के साथ–साथ मार्ग में डाकूओं द्वारा लूट लिये जाने की घटनाएं भी बहुत होती थी। बकरियां, भेड़, जुबू (गाय एवं तिब्बती याक की तरह एक दोगला पशु) पहाड़ी खच्चर ढोने वाले जानवर दानपुर पट्टी के गांवों से आयात किये जाते थे। व्यापारिक वस्तुओं को जानवरों की भारवाहन शक्ति के अनुरूप बड़े अथवा छोटे चमड़े के बोरों (भोटियों की भाषा में इन बोरों को 'फाछा' कहा जाता था।) में रखा जाता था। एक भेड़ (साधारणतया भोटिया व्यापारियों की एक भेड़ 8 सेर वजन ले जाती थी जबकि जुबू 2 मन वजन ले जाता था।) को सबसे कम बोझ ले जाने वाला तथा जुबू को सबसे अधिक बोझ ले जाने वाला शक्तिशाली पशु समझा जाता था। किसी भी व्यापारी की समृद्धि का पता उसके सामान ले जाने वाले जानवरों के झुण्ड से चलता था। भोटिया व्यापारी मार्ग में लूट लिये जाने के भय से इन दर्रों से शीघ्रता से अपनी यात्राओं को पूरा करते थे।

प्रमुख तिब्बती व्यापारिक मण्डियां अथवा हाट –

अल्मोड़ा जिले से सबसे नजदीक एवं व्यापारिक दृष्टिकोण से सुरक्षित हाट तक्लाकोट हाट (13,100 फीट की ऊँचाई पर) थी। ऐतिहासिक तथ्यों से विदित होता है कि इस हाट से औसत लेनदेन 25 लाख रूपये का होता था। जोहारी भोटिया साधारणतया ज्ञानिमा मण्डी (16,500 फुट) मण्डी में जाते थे। यह मण्डी तिब्बती घोड़ों, खच्चरों, सुहागा, ऊन, ऊन से बनी बस्तुओं तथा चाय इत्यादि कीमती वस्तुओं के लेनदेन के लिए प्रख्यात थी। दारमा के भोटिया व्यापारी जून से दिसम्बर तक तकलाकोट में व्यापार करते थे। इनके अतिरिक्त पश्चिमी तिब्बत में दारचिन, छपरंग, दाबा, शिवचिलम, ख्यामलिंग तथा मिसार आदि अन्य महत्वपूर्ण व्यापारिक हाट थे। गरतोक हाट में सरकारी तौर पर व्यापारिक मेले की व्यवस्था की जाती थी। इस हाट में सोना, चांदी तथा अन्य कीमती पत्थरों का व्यापार होता था। डकैतो एवं ठगों के भय के कारण इस हाट में लेनदेन सीमित रहता था।

अल्मोड़ा जिले के प्रमुख व्यापारिक मेले –

1. जौलजीवी का व्यापारिक मेला –

जौलजीवी का व्यापारिक मेला नवम्बर के तीसरे सप्ताह में अगह्न की पहली तिथि (मार्गशीष संक्रान्ति) से लगता था। इसमें कच्ची ऊन से बनी बस्तुएं, सुहागा, कस्तूरी, शहद, चमड़ा तथा तिब्बती घोड़े बेचे जाते थे। जौलजीवी तिब्बती सीमा से अधिक दूर न होने के कारण यदाकदा तिब्बती व्यापारी भी यहां आते थे। इसके अतिरिक्त इस मेले में दूरस्थ स्थानों से जैसे–कलकता, बम्बई, दिल्ली, अमृतसर तथा कानपुर से भी व्यापारी आते थे। जौलजीवी का यह मेला अस्कोट से 6 मील दूर गोरी एवं काली नदियों के संगम पर लगता था। काली नदी के पार नेपाल है अतः यहां नेपाल से भी व्यापारी आते थे जो मुख्य रूप से अनाज फल एवं घी इत्यादि लाते थे। जौलजीवी के मेले में लगभग दो लाख से ऊपर का सामान बिकता था।

2. बागेश्वर का व्यापारिक मेला –

बागेश्वर अल्मोड़ा नगर से 74 किमी॰ दूर सरयू एवं गोमती के संगम पर स्थित है। यहां पर प्रसिद्ध शिव मन्दिर है। जनवरी मास में मकर संक्रान्ति के अवसर पर यहां मेला लगता था यह पांच दिन तक चलता था। जौलजीवी मेल में बचे हुए माल को इस मेले में बेचा जाता था। इस मेले में जोहारी भोटिया, बड़ी संख्या में आते थे। चवरपूंछ, समूरी छाल, कस्तूरी, जड़ी बूटियां, भालू की चरबी, सुहागा तथा चमड़े के थेले इत्यादि भोटान्तिक विक्रय की वस्तुएं थी। दानपुर के लोग चटाईयां व टोकरियां इत्यादि लाते थे अल्मोड़ा के शहरी व्यापारी कारखानों की बनी चीजें जैसे कपड़े, छाता, लोहे आदि एलूमिनियम तथा पीतल के बने बर्तन, तेल, चीनी, गुड़, साबुन, दर्पण, बटन तथा ट्रंक इत्यादि लेकर पहुंचते थे। पास–पड़ोस के गांव वाले घी, दूध, फल, घास एवं ईधन लेकर पहुंचते थे। बागेश्वर के मेले के बाद भोटान्तिक व्यापारी तराई–भाबर के बाजारों का चक्कर लगाने जाते थे जहां से आकर वे थल के मेले में शामिल होते थे।

3. थल का व्यापारिक मेला –

पिथौरागढ़ शहर से 105 कि0मी0 की दूरी पर स्थित थल भोटिया के व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। यहां अप्रैल माह के मध्य में तिब्बत संक्रान्ति को मेला लगता था, क्योंकि यहां के बाद वे अपने ग्रीष्म–निवासों में होते हुये तिब्बत व्यापार के लिए चले जाते थे। क्रय–विक्रय के अतिरिक्त यह वार्षिक हिसाब–किताब का मेला होता था। भोटान्तिक व्यापारी यहां अपने पहाड़ी मित्रों का हिसाब चुकाते थे तथा सरकारी मालगुजारी भी यही चुकायी जाती थी।

थल के मेले के पश्चात् पुनः तिब्बत की व्यापार यात्रा आरम्भ हो जाती थी। इस बीच एक–दो सप्ताह के लिए माल ढोने वाले पशुओं को पहाड़ी ढलानों (इन पहाड़ी ढलानों को ''बुग्याल'' कहा जाता है) में छोड़ दिया जाता था जहां की घास जानवरों के लिए काफी लाभकारी होती थी।

इस प्रकार उपर्युक्त व्यापारिक मेलों के माध्यम से तिब्बत से आयात की गयी वस्तुएं दिल्ली कानपुर कलकता एवं पंजाब के बाजारों तक पहुंचती थी। शेरिंग चार्ल्स के अनुसार इस बात के भी सबूत मिलते हैं कि कभी–कभी वे रोम, ग्रीक तथा उनके निकटवर्ती देशों तक भी पहुंचती थी।

व्यापार की प्रमुख शर्ते –

भारत–तिब्बत व्यापार की कुछ प्रमुख शर्ते थी। इन शर्तो का दोनों देशों के व्यापारिक पक्षों द्वारा पूर्ण रूप से पालन किया जाता था। यदि कोई व्यापारी इन व्यापारिक शर्तों को तोड़ने का दोषी पाया जाता था तो उसे सजा दी जाती थी सामान्यतः व्यापार प्रारम्भ करने के लिए तीन प्रकार के समझौते होते थे।

1. पहली प्रथम सरछू–मूलछू थी। इस प्रथा के अनुसार ''भोटिया व्यापारी'' अपने तिब्बती व्यापारियों के साथ स्थानीय रूप से बनायी गयी शराब (इस शराब को ''जार'' कहते थे) को सोने एवं चांदी से छुआ कर साथ–साथ पीते थे। इस शराब को लेन–देन तय करने से पहले दोस्ती की निशानी के रूप में पीना जरूरी होता था।
2. दूसरा व्यापार की शर्तों का एक लिखित एवं विस्तृत समझौता होता था जिसमें भोटिया एवं तिब्बती दोनों अधिकारियों के हस्ताक्षर होते थे। इस समझौते को ''गमग्या'' कहा गया। भोटिया जाति में गमग्या मुख्य समझौता माना जाता था। क्योंकि भोटिया व्यापारियों के लिए यह समझौता हस्तान्तरण योग्य था एक भोटिया व्यापारी अपनी बीमारी अथवा गरीबी के कारण इसे अपनी ही जाति के किसी आदमी को इच्छानुसार बेचने के लिए स्वतन्त्र था। साधारणतया भोटिया व्यापारी ''गमग्या'' समझौता को अपनी व्यक्तिगत अभिरक्षा हेतु रखता था अतः व्यापार हेतु तिब्बत जाते समय भोटिया व्यापारी गमग्या समझौते को अपने पास रखते थे।
3. ''गमग्या'' समझौता पत्र जिसमें कि दोनों पक्षों के बीच व्यापार सम्बन्धी लेखा–जोखा होता था उसमें ''थचिया'' मुहर लगायी जाती थी यह साधारणतः लकड़ी, रबर एवं धातु की मुहर होती थी जिसमें व्यापारी के हस्ताक्षर अथवा उसका व्यापार चिन्ह खुदा रहता था। भोटिया जाति में थचिया को सर्वोच्च मान्यता प्राप्त थी। जब भी भोटिया व्यापारी तिब्बत को जाने के लिए या तिब्बत से भारत को आने के लिए अपनी यात्रा प्रारम्भ करते थे तो सर्वप्रथम अपने माल पर ''थचिया'' मोहर लगा देते थे जिससे यह सिद्ध हो जाता था कि वे उस माल के स्वामी हैं।

व्यापार की सुदृढ़ता हेतु धार्मिक संस्कार –

व्यापार की अन्य प्रथाओं एवं रिवाजों के साथ–साथ व्यापार को सुदृढ़ एवं शुभ बनाने हेतु अन्य अनेक धार्मिक संस्कार भी किये जाते थे। ब्रदीदत्त पाण्डे ने इसमें से कुछ धार्मिक रिवाजों का वर्णन किया। जिसमें पहला ''कुदाखार'' है। इसके अन्तर्गत व्यापारी अपने पास कुछ धार्मिक पुस्तकें रखते थे अथवा अपने हाथ में देवी या देवता की मूर्ति खुदवा लेते थे और व्यापार के लेन–देन में इन धार्मिक पुस्तकों अथवा देवी– देवताओं की सौगन्ध लेते थे। दूसरा ''सिंगचन्द'' है इसके अन्तर्गत किसी लकड़ी अथवा पत्थर के टुकड़ों को तोड़कर दो बराबर भागों में बांट लिया जाता था इन टुकड़ों को व्यापारी आपस में एक–एक रख लेते थे। यदि कभी किसी व्यापारी की वास्तविकता पर सन्देह होता था तो उस समय दोनों टुकड़ों को जोड़कर उसकी सत्यता एवं असत्यता प्रकट हो जाती थी अथवा यदि किसी व्यापारी को समझौता तोड़ने एवं धोखा देने का अपराधी पाया जाता था तो उसे उस लकड़ी या पत्थर के टुकड़े के वजन के बराबर सोना देना होता था।

भोटिया व्यापारियों पर लगने वाले प्रमुख व्यापारिक कर –

भोटिया व्यापारियों को अपने व्यापार में विभिन्न प्रकार के कर देने पड़ते थे। इस प्रकार के करों की दरें भारत एवं तिब्बत में अलग–अलग थी। जिस समय अल्मोड़ा में चन्द राजाओं का शासन था उस समय चन्द राजाओं की ओर से अस्कोट के रजवार दारमा एवं जोहार से मालगुजारी बसूल करते थे। व्यापार से राजस्व भी वसूल किया जाता था। चन्द शासन काल में भोटियों द्वारा दिये जाने वाले विभिन्न प्रकार के करों का कोई ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त नहीं होता है। 1790 ई0 में यहां गोरखों का शासन स्थापित होने पर जोहार एवं दारमा में प्रतिवर्ष क्रमशः 12,500 रू0 तथा 15,000 रू0 सरकारी राजस्व निश्चित किया गया लेकिन भोटियों ने इस राजस्व में कमी करने की अपील की। बाद में भक्ति थापा द्वारा इस विषय में जाँच करने के उपरान्त गोरखा सरकार ने इस कर में जोहार में 8000 रू0 तथा दारमा में 9000 रू0 की कमी कर दी। 1815 ई0 में अल्मोड़ा ब्रिटिश शासन के अधीन आया। अब अंग्रेजों ने गोरखा सिक्कों में वसूली बन्द करके फरुखावादी सिक्कों को प्रचलित किया। 1815 ई0 में चार भोटिया महालों (महालों से तात्पर्य परगनों अथवा पट्टियों से था।) से अर्थात् जोहार दारमा, व्यास एवं चौंदस से कुल वसूली 9367 रू0 निर्धारित की गयी। अल्मोड़ा में 1817 ई0 में ट्रेल द्वारा दूसरा भूमि बन्दोबस्त किया गया जिसके द्वारा भोटिया परगनों से होने वाली आय 9590 रू0 निर्धारित की गयी। 1818 ई0 में पुनः ट्रेल द्वारा ही तीसरा भू–बन्दोबस्त किया गया चौथे बन्दोबस्त द्वारा कस्तूरी, शहद, शिकार खेलने आदि से कर हटा लिया गया जिससे भोटिया परगनों से होने वाली आय 9590 रू0 से घटकर 3860 रू0 हो गयी। उपर्युक्त वस्तुओं से कर हटा देने का प्रमुख कारण इन वर्षों के दौरान भोटिया व्यापार में गिरावट आना था। बन्दोबस्त श्रृंखला

में 1863 ई0 में बेकैट द्वारा किया 10वां बन्दोबस्त सबसे महत्वपूर्ण था। यह 30 वर्षों तक लागू रहा। इस अवधि में बेकैट ने भोटियों की आर्थिक स्थिति में सुधार को देखते हुए प्रस्ताव तैयार किये और 6138 रू0 कर निर्धारण किया।

1900 ई0 से 1902 ई0 के बीच गूज द्वारा किये गये 11 वें बन्दोबस्त द्वारा पहली बार भोटियों के जानवरों पर प्रति जानवर 6 पाई कर लगाया गया। जानवरों की चराई पर भी कर लगाया गया जिससे राजस्व बड़कर 7790 रू0 हो गया। जौहार परगने के भोटियों ने इन करों के विरोध में एक याचिका प्रस्तुत की जिसे बन्दोबस्त अधिकारी द्वारा खारिज कर दिया गया लेकिन भोटियों ने इस दिशा में अपना प्रयास जारी रखा और अन्ततः उन्हें सफलता मिल ही गयी जब कि सरकारी आदेश संख्या 220 –रि (8) दिनांक 8 मार्च, 1938 के द्वारा जानवरों की चराई से कर हटा दिया गया।

भोटिया व्यापारियों पर तिब्बत में लगने वाले कर –

भोटिया व्यापारियों पर तिब्बत में लगने वाले कर उन पर भारत में लगाये करों की तुलना में कई गुना अधिक एवं विलक्षण प्रकृति के होते थे। भोटिया व्यापारियों को तिब्बत में विभिन्न दर्रों से प्रवेश करते ही ''लाथाल'' कर देना पड़ता था। यह कर 6 1/4 आना प्रति व्यक्ति की दर से लगता था। दूसरा कर ''गोथाल'' था। इसके अन्तर्गत भी इतनी ही धनराशि तिब्बती अधिकारियों को देनी होती थी यह कर सामान के रूप में भी दिया जा सकता था। भोटियों को तिब्बत ले जाने वाली सभी वस्तुओं पर कर नहीं देना पड़ता था। अनाज, तम्बाकू, कपड़ों, चीनी, गुड़ तथा सूखे मेवों पर कर देना पड़ता था जबकि कीमती पत्थरों पर कोई कर नहीं देना पड़ता था। विभिन्न वस्तुओं पर लगने वाले इस कर को ''चू–थाल'' कहा जाता था। यह सामान के कुल मूल्य के 10 प्रतिशत के बराबर लिया जाता था।

उपर्युक्त करों के अतिरिक्त ''जोंग पोन'' कुछ अन्य कर भी वसूल करता था जैसे– छाठेल (व्यापार में कर), लुक्ठेल (भेड़ों पर कर), पाथाल (भोटिया व्यापारियों द्वारा तिब्बत के सूर्य को तापने का कर) तापटेल (चूल्हे पर कर) आदि। व्यांस एवं चोंदस के भोटिया व्यापारियों को तिब्बत में ''जोंग–पोन'' अधिकारी को अनाज के रूप में भेंट भी देनी पड़ती थी इस कर को ''नैका'' कहते थे। भोटान्तिक व्यापारी इन करों को देने के लिए मजबूर थे क्योंकि कर न देने से उनके व्यापार में रूकावट आ सकती थी। इन करों की एक विशेषता यह थी कि ग्राम प्रधान इन करों से मुक्त थे।

ब्रिटिश शासनकाल में व्यापार का विस्तार तथा आयात व निर्यात –

प्राचीन समय से चला आ रहा भारत–तिब्बत व्यापार ब्रिटिश काल में काफी विकसित हुआ। तिब्बत से लायी गयी वस्तुओं की मांग सम्पूर्ण भारत में थी जैसा कि पहले कहा जा चुका है कभी–कभी ये वस्तुएं

भारत के बाहर भी बेची जाती थी। इन वस्तुओं में अच्छी किस्म का सुहागा प्रमुख था जो तिब्बत में बहुतायत मात्रा में पाया जाता था। भोटिया व्यापारी कच्चे सुहागे को तिब्बत से आयात करके अपने घरों में शुद्ध करते थे। भोटिया द्वारा शुद्ध किया गया यह सुहागा मध्य एशिया यूरोप तथा मिश्र में भेजा जाता था। 1846 ई0 में आस–पास यूरोपियन बाजारों में यह सुहागा 9 रू0 प्रति मन की दर से निर्यात किया जाता था। सुहागे की लगातार मांग बढ़ने के कारण 1858 ई0 में इसके दाम बढ़कर 22 रू0 प्रतिमन पहुंच गये थे। 1858 ई0 में केवल कलकता से ही 10896 मन सुहागा यूरोप को निर्यात किया गया था। यह व्यापार भोटिया जाति के लिए बहुत ही लाभदायक था क्योंकि जो सुहागा तिब्बत से 1 रू0 प्रतिमन के हिसाब से खरीद कर लाया जाता था वह बागेश्वर में 10 से 20 रू0 प्रतिमन की कीमत से बेचा जाता था तथा भारत में खरीदा गया अन्य माल तिब्बत में आठगुनी अधिक कीमत पर बेचा जाता था। कीमती पत्थरों के व्यापार में भी भोटिया व्यापारियों को विशेष लाभ था क्योंकि वे भार में हल्के तथा दाम में ऊँचे होते थे। सोने की धूल जिसे पिपिलिका सोना (चीटियों द्वारा खोदा गया सोना) कहा जाता था का भी आयात किया जाता था। यह सोना तिब्बत में 6 विभिन्न खानों से निकाला जाता था। आयात किये जाने वाले सामान में मुख्य ''लान्चा'' नमक था। इस नमक की अल्मोड़ा जिले एवं उसके आस–पास के क्षेत्रों में काफी मांग थी क्योंकि पहाड़ी क्षेत्रों में समुद्री नमक आसानी से एवं सस्ते दामों में उपलब्ध नहीं होता था। उसके स्थान पर सांभर नमक बेचा जाता था जो गरीब जनता के लिए काफी महंगा था। सांभर नमक नगद मूल्य पर बेचा जाता था जबकि भोटिया व्यापारी तिब्बती नमक को अनाज के बदले बेचते थे। आयात होने वाले सामान में ऊन का भी उल्लेखनीय महत्व था जो कि भोटिया अर्थव्यवस्था का आधार स्तम्भ था। उनसे गलीचे, कम्बल, शाल, थुल्मा (ऊनी रजाई) तथा पट्टू (एक प्रकार का ऊनी वस्त्र) आदि बनाये जाते थे। इन वस्त्रों की हिन्दुस्तान के अन्दर एवं बाहर काफी मांग होती थी। अपने विशिष्ट रंगों, डिजाइनों तथा मजबूती के कारण गलीचे हिन्दुस्तान के बाहर रोम एवं ग्रीक में भी काफी प्रसिद्ध थे। भोटिया व्यापारी तिब्बत से ऊन काफी सस्ते दामों में लाते थे और स्वयं की जरुरतों को पूरा करने के पश्चात् शेष बचे ऊन को कानुपर की मिलों में बेच देते थे। प्रथम विश्व युद्ध तक तिब्बत से लायी गयी ऊन कानपुर के बाजार में 30 से 50 रू0 प्रतिमन तक बिकती थी। 1923 ई0 में कुल मिलाकर 27008 मन ऊन तिब्बत से लायी गयी थी।

भोटिया व्यापारियों को ऊन के व्यापार में सबसे मुख्य असुविधा यह थी कि ऊन के व्यापार में सुहागे की तुलना में अधिक पूंजी की आवश्यकता होती थी। छोटी पूंजी वाले भोटिया व्यापारियों के पास यदि अधिक जानवर होते थे तो वे तिब्बत से 10 मन सुहागे को 30 रू0 में लाना पसन्द करते थे जिससे हल्द्वानी में उन्हें 40 रू0 का लाभ प्राप्त हो जाता था जब कि ऊन से 40 रू0 मुनाफा कमाने के लिए उन्हें सुहागे से अधिक वजन वाला ऊन खरीदना पड़ता था तथा अधिक पूंजी की आवश्यकता होती थी क्योंकि

तिब्बत में ऊन 13 से 14 रू0 प्रतिमन मिलता था उस ऊन को हल्द्वानी में बेचने पर भोटिया व्यापारियों को 21 से 22 रू0 प्रति मन की कीमत मिलती थी जिससे शुद्ध लाभ केवल 8 रू0 प्रतिमन प्राप्त होता था। फिर भी 19वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में ऊन का व्यापार उन्नति पर था। गूज ने उस पर टिप्पणी करते हुये लिखा है–तीस वर्ष पूर्व भोटिया व्यापारी ऊन का आयात अपनी स्वयं की आवश्यकतानुसार करते थे बाद में कानपुर में मिलों के खुलने पर वहां दिन–प्रतिदिन तिब्बती ऊन की मांग में वृद्धि होने लगी अतः धनी ''भोटिया व्यापारी'' ऊन की आपूर्ति बड़ी उत्सुकता से करने लगे। मुझे बताया गया कि मिलों के एजेण्टों द्वारा इस वर्ष (1902 ई0) 20 हजार रू0 अग्रिम दिये गये और कई लोगों ने इसमें अपनी पूंजी भी लगायी।

प्रारम्भिक वर्षों में भारत तिब्बत व्यापार केवल अदला–बदली के आधार पर तय होता था। इस अदला–बदली के व्यापार को ''बालथिया'' व्यापार के नाम से जाना जाता था जो मुख्यतः भारतीय माल के लिए नमक सुहागे के बदले किया जाता था ऐसी व्यापार प्रणाली में कीमत का हिसाब लगाना आसान नही था। बाद के वर्षों में जब भारत में अनाज की कीमतें तथा तिब्बत में ऊन की कीमतें बड़ने लगी तो दोनों देशों के व्यापारियों ने अदला–बदली की प्रथा को असुविधाजनक पाया। अतः ब्रिटिश काल के दौरान अदला–बदली की प्रथा को नगद भुगतान प्रथा में बदल दिया गया। जैसा कि कहा जा चुका है कि अदला–बदली की प्रथा में व्यापार की कुल मात्रा का अन्दाज लगाना बहुत मुश्किल था। इसी कारण इस सदी के आरम्भिक वर्षो तक भारत तिब्बत व्यापार का लेखा–जोखा आसान नहीं था। भोटिया व्यापारियों ने भी इस प्रकार के व्यापार का कोई लेखा–जोखा नहीं रखा। फिर भी हिमालयन गजेटियर में इस सदी के अन्तिम वर्षों के कुछ आंकड़े प्राप्त होते है जो निम्न तालिका में दिये जा रहे हैं–

जोहार एवं दारमा के दर्रों से भारत तिब्बत व्यापार

वर्ष	जोहार दर्रों से व्यापार			दारमा दर्रों से व्यापार			कुल व्यापार
	निर्यात	आयात	वार्षिक व्यापार	निर्यात	आयात	वार्षिक व्यापार	
1878.79	85845	.	85845	126113	.	126113	211958
1879.80	52558	101084	153642	56009	109827	165836	319478
1880.81	48082	139081	187163	51091	124799	175890	363053
1881.82	52277	158377	210654	86308	114486	200794	411448
1882.83	52134	144684	196818	86456	90681	177137	373955

उपर्युक्त तालिका से विदित होता है कि जोहार दर्रों से निर्यात की मात्रा दारमा दर्रों की अपेक्षा कम थी जबकि आयात की वार्षिक दशा बिल्कुल इसके विपरीत थी। जोहार का वार्षिक व्यापार मूल्य भी दारमा के वार्षिक व्यापार मूल्य से अधिक था लेकिन इस शताब्दी के प्रारम्भ से दारमा घाटी का व्यापार बढ़ने लगा। दारमा के व्यापार के विकास के विषय में गूज ने निम्न शब्द कहे–''तिब्बतीय व्यापारिक मार्गों में जोहार सबसे पुराना एवं काफी महत्वपूर्ण था। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक वर्षों में यह काफी फला–फूला। नीति एवं माणा दर्रों ने भी कभी गम्भीरता पूर्वक इसका मुकावला नहीं किया लेकिन इन वर्षों में दारमा जोहार की तुलना में अधिक ठोस सम्पत्ति एवं समृद्धि प्राप्त कर रहा है जिसे जोहार ने कई वर्ष पूर्व प्राप्त कर लिया था।

गरतोक बाजार घी, घोड़े, चवरपूंछ तथा सोने के आयात के लिए महत्वपूर्ण था अक्टूबर 1910 ई0 के दौरान इस बाजार से भोटिया व्यापारियों ने 9147 रू0 का माल आयात किया जिसमें 40 घोड़े (80 रू0 प्रति घोड़े की दर से), 10 खच्चर (100 प्रति खच्चर की दर से), 330 मेमने (3 रू0 50 पैसे प्रति मैमना) 20 मादा भेड़े (3 रू0 50 पैसे प्रति भेड़), 6 मन घी (30 रू0 प्रति मन की दर से) 24 जोड़े गलीचे (8 रू0 प्रति जोड़े की दर से) 5 तोला सोना (20 रू0 प्रति तोले की दर से), एक मन चवरपूंछ (40 रू0 प्रति मन की दर से) का आयात हुआ।

इससे पूर्व सितम्बर 1910 ई0 में ज्ञानिमा बाजार से भारत को 2,01,388 रू0 का माल आयात किया गया था। इस आयातित माल में मुख्य आयात बीस हजार कारबोज (एक कारबोजे में लगभग 35 सेर नमक होता था) 15 सेर प्रति रू0 की दर से (चार हजार कारबोजे सुहागा) 13 सेर प्रति रू0 की दर से (चौदह हजार कारबोजे कच्चा ऊन) 2.5 सेर प्रति रू0 की दर से (चार सौ मन घी) 1 सैर प्रति रू0 की दर से (50 ड्रम (एक ड्रम 5 सेर के बराबर होता है) तिब्बती चाय) 5 रू0 प्रति ड्रम की दर से, बीस हजार भेड़ के बच्चे (दो रूपया आठ आना प्रति भेड़ का बच्चा), पच्चीस सौ बकरियाँ (8 रू0 प्रति बकरी की दर से), पन्द्रह सौ मादा भेड़े (6 रू0 प्रति मादा भेड़) एक सौ पचास जीबू (30 रू0 प्रति जीबू), बीस मन चवरपूँछ (40 रू0 प्रति मन की दर से), 300 तोले सोना आदि का किया गया।

इस समय तक भोटिया व्यापारियों की निर्यात सम्बन्धी वस्तुएं बदल चुकी थी अब वे अनाज के स्थान पर अन्य दैनिक प्रयोग की वस्तुएं अधिक ले जाने लगे थे इन वस्तुओं में सूती व ऊनी वस्त्र, सूखे मेवे, विभिन्न प्रकार के बर्तन चीनी, तेल, गुड़, तम्बाकू, साबुन, सौन्दर्य सामग्री, जूते व खालें आदि प्रमुख थे। भारत तिब्बत व्यापार के उस काल में समस्त तिब्बत पिछड़ा हुआ था। अपने दैनिक प्रयोग की वस्तुओं के लिए भी वह भारत पर निर्भर था अतः ऐसी परिस्थितियों में चतुर भोटिया व्यापारियों को निर्यात द्वारा अच्छे

सौदे का अवसर मिला तथा उन्होंने काफी लाभ कमाया। उपर्युक्त वस्तुओं की तिब्बती बाजारों में व्यापक मांग थी।

प्रथम विश्व युद्ध के कारण भारतीय वस्तुओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि होने लगी, जिसके परिणाम स्वरूप भोटिया व्यापारियों को पहले की अपेक्षा कम सामान खरीदने को बाध्य होना पड़ा अब वे तिब्बत को कम माल ले जाते थे और वहां से पहले की तुलना में अधिक माल लाते थे परन्तु इससे तिब्बती व्यापारियों को अपने ही देश में घाटा होने लगा अतः आने वाले वर्षों में आयात भी कम होने लगा क्योंकि तिब्बतीय व्यापारियों ने भारतीय वस्तुओं को खरीदने में पर्याप्त कमी कर दी थी।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में तथा आजादी के बाद मूल्यों में भारी उतार –चढ़ाव के बावजूद भी भारत तिब्बत व्यापार निरन्तर चलता रहा, लेकिन 1962 ई0 में जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है चीन द्वारा तिब्बत पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद अति प्राचीन समय से चला आ रहा भारत–तिब्बत व्यापार अचानक समाप्त हो गया।

तिब्बत व्यापार का प्रभाव –

कुमाऊँ के पक्ष में तिब्बत व्यापार का सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह था कि इस व्यापार द्वारा उस समय जिले में असंख्य लोगों को रोजगार मिला विशेषतया भोटिया अर्थ–व्यवस्था का तो यह आधार स्तम्भ ही था। अंग्रेजों द्वारा अल्मोड़ा के पहाड़ी क्षेत्रों में चाय की खेती को प्रारम्भ करने के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण तिब्बतीय व्यापार को बढ़ाना भी था। व्यापारिक मार्गों की कठिन परिस्थितियों तथा तिब्बत में मनमाने करों के बावजूद भी भोटियों का तिब्बत व्यापार बढ़ता चला गया।

जहां तक अंग्रेजों की तिब्बत विषयक विचारधारा का प्रश्न है अंग्रेज न तो तिब्बत को हस्तगत करना चाहते थे तथा न उसके आंतरिक प्रशासन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना चाहते थे। अंग्रेजों का एक मात्र उद्देश्य रूस को तिब्बत में प्रवेश करने से रोकना था क्योंकि इससे अंग्रेजों के भारतीय साम्राज्य के लिए गम्भीर संकट उत्पन्न हो सकता था। वास्तव में ब्रिटिश नीति तिब्बत को ''बफर स्टेट'' मानने की थी। निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में अंग्रेज आर्थिक कारणों से तिब्बत से सम्बन्ध रखना चाहते थे परन्तु धीरे–धीरे मध्य हिमालय की महत्वपूर्ण स्थिति ही अंग्रेजों की तिब्बत व्यापार नीति का माध्यम बनी। ब्रिटिश नीति का उद्देश्य था कि तिब्बत को प्रत्यक्षतः अपने अधिकार में न किया जाय लेकिन साथ ही साथ रूस को तिब्बत पर अधिकार करने से रोका जाय। अतः तिब्बत से व्यापार की आड़ में अंग्रेजों ने उन पर नजर रखी।

तालिका नं॰ 1
1899 ई0 से 1902 ई0 तक

क्र0स0	जनपद अल्मोड़ा के चाय बगीचों का नाम	पोण्ड में पिछले तीन वर्षों के उत्पादन	मूल्य 6 आना प्रति पौण्ड
1ण	कौशानी		
2ण	नौधर	77ए716	29ए144
3ण	मल्ला कत्यूर	114ए034	42ए763
4ण	स्याही देवी	ण533	200
5ण	चीरा पानी	9ए034	3ए388
6ण	चारसौन	8ए824	3ए309
7ण	तल्ला लोहारी	7ए455	2ए796
8ण	मल्ला लोहारी	ण533	200
9ण	दूनागिरी	24ए000	9ए000
10ण	चौकोड़ी	14ए094	5ए589
11ण	बेरीनाग	44ए781	16ए793
12ण	कविना	8	7
13ण	मागरी	53ए228	19ए961
14ण	मुभलोते	26ए198	9ए824
15ण	जौना	11ए902	4ए203
16ण	लौथ	23ए460	8ए798
17ण	हवलबाग	11ए698	4ए387
18ण	देवलधार	3ए500	1ए313
19ण	मायावती	50	19
20ण	राइकोट	1ए571	1ए589
21ण	झलतौला	5ए018	1ए882
22ण	सुनदायर	8ए667	3ण250
23ण	ओड्स बीजाईपुर	6ए700	2ए513
	कुल	253ए814	169ए844

तालिका नं॰ – 2

	सुहागा				नमक				ऊन			
	1840–41 के बीच		1898 ई0 से 1901 ई0 के बीच तीन वर्ष का औसत		1840–41 के बीच		1898 ई0 से 1901 ई0 के बीच तीन वर्ष का औसत		1840–41 के बीच		1898 ई0 से 1901 ई0 के बीच तीन वर्ष का औसत	
	आयात मात्रा मन में	मूल्य	आयात मात्रा मन में	मूल्य	आयात मात्रा मन में	मूल्य	आयात मात्रा मन में	मूल्य	आयात मात्रा मन में	मूल्य	आयात मात्रा मन में	मूल्य
	मन	रूपये	मन	रूपये	मन	रूपये	मन	रूपये	मन	रूपये	मन	रूपये
जोहार	9ए000	45ए000	6ए808	5ए106	2ए000	8ए000	5ए510	22ए040	15	750	2ए388	47760
दारमा ब्यास	8ए000	40ए000	14ए687	11ए015	3ए000	12ए000	13ए8855	55ए420	7	400	6ए479	129580
कुल	7ए000	85ए000	21ए495	16ए121	5ए000	20ए000	19ए365	77ए460	22	1150	8ए867	177340

संदर्भ –

1. सांस्कृत्यायन, राहुल (संवत् 2015) वाराणसी
2. डबराल, शिव प्रसाद (1965–1978) उत्तराखंड का इतिहास, खण्ड 1 से 7 तक दुगड्डा, गढ़वाल।
3. राइया, रतन सिंह (1974) शौक सीमावर्ती जनजाति, धारचूला।
4. पंत, जे॰सी॰ (1977) भोटान्तिक समाज का आर्थिक अध्ययन, शोध प्रबन्ध, आगरा विश्वविद्यालय।
5. पांडे, बद्रीदत्त (1937) कुमाऊँ का इतिहास, अल्मोड़ा।
6. शेरिंग, सी॰ए॰ (1906) वेस्टर्न तिब्बत एण्ड ब्रिटिश बाडर्सलैन्डस एडवर्ड आरनोन्ड, लन्दन।
7. स्वामी प्रणवानन्द (1948) कैलाश मानसरोवर, एस॰पी॰लीग लि॰ कलकत्ता।
8. रामजे, हेनरी (1874) रिपोर्ट आन दि सेटिलमेंट आफ कुमाऊँ डिस्ट्रिक्ट गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद।
9. गूज, जे॰ई॰ (1903) रिपोर्ट आन दि सेटिलमेंट आफ अल्मोड़ा, गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद।
10. रेज, डेविड (1955) बुद्धिस्ट इन्डिया, कलकत्ता।
11. एटकिन्सन, ई॰टी॰ (1973) हिमालयन गजेटियर, खण्ड एक से तीन तक कोस्मो प्रकाशन, नई दिल्ली।